श्रीदक्षिणामूर्तिसंस्कृतग्रन्थमाला - १५

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यकृता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

श्रीचित्सुखाचार्यकृता

भावतत्त्वप्रकाशिका

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

श्री १०८ स्वामी महेशानन्द गिरि जी

महाराज आचार्य महामण्डलेश्वर

के निर्देशानुसार

श्री स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती

द्वारा सानुवाद सम्पादित

प्रकाशक

श्री दक्षिणामूर्ति मठ, प्रकाशन

वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
	दुःखादि सकल अनर्थों के कारण अज्ञान का निवारण ज्ञान का प्रयोजन है।	२-८
१-२	मंगलाचरण	९-११
३	गुरुजी की इच्छानुसार ग्रन्थ का निर्माण	१२
४	ग्रन्थ का विषय आत्मस्वरूप-निरूपण है	१२
५	उक्त विषय वेद का सिद्धान्त तथा गुरु-कर्तृक उपदिष्ट है	१४
६	ग्रन्थरचना का उद्देश्य	१४
७-८	अनर्थरूप संसार का कारण अविद्या तथा पुरुषार्थ-रूप मुक्ति का कारण ब्रह्मविद्या है, परन्तु कर्म नहीं	१५-१७
९-१९	**कर्मवादियों का पूर्वपक्ष–**	**१८-२४**
९	केवल कर्म के द्वारा ही मुक्ति होती है	१८
१०-१३	कर्म द्वारा मुक्ति का कौशल	१९-२०
१४-१६	श्रुति और स्मृति में कर्म का ही विधान है	२१-२२
१७	वेदवाक्य क्रियापरक है	२२
१८	यावज्जीवन कर्मानुष्ठान श्रुतिसम्मत है	२३
१९	क्रिया-असम्बद्ध ज्ञान वाक्य द्वारा प्रमाणित नहीं होता है	२४
२०-२१	ज्ञानकर्मसमुच्चय ही मुक्ति का कारण है, ऐसा पूर्वपक्ष	२४-२५

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
२२-२८	'केवल कर्म द्वारा मुक्ति' रूप पूर्वपक्ष का खण्डन	२८-३५
२९-४०	**अज्ञान के विनाशक रूप से भी कर्म मोक्ष का साधन नहीं है**	**३९-५१**
२९-३४	सब कर्मों की प्रवृत्ति का हेतुनिरूपण एवं आत्मज्ञान से ही समस्त संसार की निवृत्ति के पक्ष का दृढीकरण	३९-४४
३५	अज्ञानज कर्म अज्ञान-निवारक नहीं हो सकता	४५
३६	श्रुति प्रमाण-जात सम्यक् ज्ञान बाधित नहीं होता और पुरुषार्थ-सिद्धि के लिये कर्म की आवश्यकता नहीं है	४८
३८	बाधित अविद्या पुन: विद्या को बाधित नहीं कर सकती	५०
३९	वर्णाश्रमाद्यभिमानी वेदकिङ्कर है	५१
४०	ब्रह्मज्ञ वेदकिङ्कर नहीं है	५१
४१-४४	संसार वर्णन तथा उसकी निवृत्ति का उपाय कामवर्जन	५१-५४
४५-५२	**कर्म परम्परा से मोक्ष के प्रति कारण है**	**५५-५६**
४५-४७	कर्मों से चित्तशुद्धि के द्वारा वैराग्य की उत्पत्ति	५७
४८	प्रत्यगात्मज्ञान की इच्छा	
५०	चित्तशुद्धि के लिये नित्यनैमित्तिक कर्म की आवश्यकता	५८
५२	परम्परा से कर्म मुक्ति का कारण है	६०
५३	मुक्ति कर्मों के चारों फलों में एक भी नहीं है	६१
५४-५९	ज्ञान और कर्म का समुच्चय भी मुक्ति का कारण नहीं है	६२-६५

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
६०	जहाँ ज्ञान और कर्म का नित्यनैमित्तिक भाव है, वहाँ दोनों का समुच्चय भी सिद्ध है	६६
६१-६७	अद्वैत आत्मतत्त्वज्ञान तथा ज्ञान-कर्म का समुच्चय असम्भव है	६७-७२
६८-७९	द्वैताद्वैतवादियों के मत में भी ज्ञान-कर्म का समुच्चय असम्भव है	७४-८७
८०	'केवल कर्म से ही मुक्ति' इस पूर्वपक्ष का खण्डन	८९
८१	काम्य कर्मों का त्याग तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग असम्भव है	९१
८२	फलहीन होने के नाते नित्यकर्म काम्यकर्मों का निवारक नहीं हो सकता	९२
८३	नित्यकर्म काम्यनाशक होने का शास्त्र में वर्णन नहीं है	९२
८५	कर्मफल अनन्त है एवं कार्मियों की संख्या भी अनन्त होने के नाते श्रुति में भी अनेक स्थानों पर कर्म की व्यवस्था हो गयी है	९३
८६	कर्मविधानबाहुल्य से ज्ञान का अप्रामाण्य सिद्ध नहीं हो सकता	९४
८७	आत्मज्ञान के लिये श्रवणादिविधायिनी श्रुतियों की विद्यमानता	९५
८८	आत्मा या आत्मोपासना के विषय में अपूर्व आदि विधि श्रुति का अभाव	९८
८९	वाक्यैकगम्य धर्माधर्म के विषय में श्रुतिवाक्य के बिना अविश्वास होने पर भी अप्रमेय स्वतः सिद्ध आत्मा में अविश्वास करने का कारण नहीं है	१००
९०	ज्ञान निष्फल नहीं है	१०१

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
९१	वेद में कर्मकाण्ड की ही क्रियार्थता है, ज्ञानकाण्ड की नहीं	१०२
९२	आत्मा का कर्तृत्व अप्रामाणिक है, अत: प्रवृत्ति असम्भव है	१०३
९५	आत्मा में स्वर्गादि सुखसम्बन्ध का अभाव	१०५
९६	यावज्जीवन कर्मविधान अज्ञों के लिए है ज्ञानियों के लिए नहीं	१०५
९८	स्वत:सिद्ध वस्तु के ज्ञान के सिवाय तत्त्वमसि आदि महावाक्यों का अर्थान्तर नहीं है	१०७
९९	ज्ञान से ही मुक्ति होती है, कर्म से नहीं	१०८

द्वितीय अध्याय

तत्त्वमसि वाक्यस्थ 'त्वं' पद का अर्थ निर्णय

१-४	वाक्यरूप प्रमाण से ही 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार वाक्यार्थ का ज्ञान होता है	११०-११५
५	प्रत्यक्षादि के साथ तत्त्वमस्यादि वाक्यों का विरोध नहीं है	११६
६-८	वैराग्यादियों का ज्ञान के प्रति कारणत्व निरूपण	११७
९-१०	वाक्यार्थबोध से अज्ञान का ध्वंसरूप मोक्ष	११७-११८
११-२१	स्थूल शरीर से आत्मा का विवेक	११८-१२३
२२-४४	सूक्ष्मदेह से आत्मा का विवेक	१२७-१४४
४५	द्वैत आत्मा में कल्पित होने के नाते मिथ्या है	१४५
४६	आत्मा में भेदबुद्धि अज्ञानविजृम्भित है	१४६
४७-५०	अज्ञान ही सब प्राणियों में विद्यमान एक आत्मा में बहुत्व-बुद्धि का कारण है	१४६-१४९

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
५१-५२	मोहमात्र उपादान होने के कारण यह संसार थोड़ा सा भी आत्मस्पर्शी नहीं है	१५०-१५१
५३	आत्मा और अनात्मा के सम्बन्धकारक अहंकार के नाश से ही अद्वैतसिद्धि	१५२
५४-५७	आत्मा में अहंकार की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के विचारपूर्वक आत्मा का लक्ष्य वस्तु के रूप में निर्णय तथा लक्षणावृत्ति आदि का विचार	१५४-१५७
५८-९५	सांख्य प्रक्रिया से बुद्धि के परिणामित्व का वर्णन साक्षी-आत्मा के कर्तृत्व आदि सर्वप्रकार परिणामों का निषेध तथा उसी के लिए कुछ दृष्टान्त	१५९-१८७
९६	आत्मा और अनात्मा का विवेक ही अनुमान से सिद्ध होता है, अद्वैत आत्मज्ञान नहीं	१८८
९७	द्रष्टा, दृश्य और दर्शनात्मक यह जगत् अनात्मरूप से त्याज्य होने पर भी अनात्मरूप प्रकृति पदार्थ में आश्रित नहीं है, परन्तु आत्माश्रित और आत्मविषयक अज्ञान में ही आश्रित है	१९०
९८-९९	पूर्वकारण से ही आत्मा की अप्रमेयत्व-सिद्धि	१९१-१९२
१००-१०२	आत्मा और अनात्मा का परस्पराध्यास	१९३-१९४
१०३-१०४	आत्मतत्त्वज्ञान से ही अध्यास की निवृत्ति	१९४-१९५
१०५	अविद्यानाश ही आत्मतत्त्वज्ञान है परन्तु आत्मतत्त्वज्ञान अज्ञातार्थ की अवगतिरूप नहीं है	१९६
१०६-१०७	दृश्य, दर्शन, द्रष्टा आत्मसाक्षिक है	१९६-१९७
१०८	इसलिए आत्मा सर्व कारक, क्रिया, फल और विभागात्मक संसारशून्य है	२०१
१०९	द्रष्टा, दृश्य और दर्शन की विभागसिद्धि आत्मा के साक्षित्व में ही होती है	२०२

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
११०	स्वत:सिद्ध आत्मा का साक्षित्व अन्य साक्षिपूर्वक नहीं है	२०४
१११	उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार में जो निर्विकार अवगतिरूप से रहते हैं, उन्हें ही 'मैं' के रूप से जानना चाहिये	२०४
११२-११३	अज्ञानजात और इतरेतर के सिद्धि सापेक्ष द्वैतवर्ग के बाध से अद्वैत की सिद्धि होती हैं, इस विषय में श्रुति का उदाहरण	२०६-२०७
११४-११५	आत्मा से भिन्न बुद्ध्यादि अनात्मपदार्थ पूरी तरह मिथ्या है, क्योंकि आत्मचैतन्य के आश्रय में ही उनकी सिद्धि, अन्यथा नहीं	२०८-२१२
११६-११९	श्रुति के उपदेश से अहंकार के द्वारा बद्ध आत्मा की मुक्ति होती है, किन्तु परमार्थत: आत्मा बन्धन एवं मुक्ति दोनों से रहित है	२१३-२१६
	तृतीय अध्याय	
	तत्त्वमसि आदि वाक्यजात ज्ञान से ही अज्ञान की निवृत्ति होती है, इसलिए वाक्यों की व्याख्या और वाक्यार्थ अवबोध के लिये 'तत्' और 'त्वं' पदार्थों का निर्णय	**२१७**
१	तत्त्वमसि आदि महावाक्यों से 'मैं ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान से ही मुक्ति है	२२८
२	वाक्यस्थ 'त्वं' पद की सन्निधि से 'तत्' पदार्थ का अनात्मत्व और 'तत्' पद की सन्निधि से 'त्वं' पदार्थ का दु:खित्व निषिद्ध होता है	२३१
३	वाक्यस्थ पदद्वय का सामानाधिकरण्य, पदार्थद्वय का विशेषण-विशेष्यता तथा वाच्यार्थद्वय और वाक्यतात्पर्यविषय प्रत्यगात्मा का लक्ष्यलक्षण सम्बन्ध	२३२

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
४-५	वाक्यार्थज्ञान के साधनविषय में विधि प्रयुक्त है	२३६-२३८
६	सांख्यशास्त्रोक्त विवेकरूप भेदज्ञान साक्षी आत्मा में अश्रुत होने के कारण वह विवेक भ्रान्ति है	२४१
७-८	अनादि अनिर्वचनीय भावरूप अज्ञान स्वत:सिद्ध साक्षिचैतन्य से सिद्ध है, क्योंकि प्रमाण-निवर्त्तनीय वस्तु प्रमाण के द्वारा उपपन्न नहीं हो सकती	२४४-२४७
९	'घटाकाश महाकाश' आदि वाक्य की तरह 'तत् त्वम्' आदि वाक्य भी अखण्डार्थ का बोधक है	२५३
१०	'तत्' पदार्थ के द्वारा विशेषित होने के कारण त्वमर्थ का दु:खित्व और 'त्वं' पदार्थ के सान्निध्य से तदर्थ की प्रत्यक्ता सम्पादित होती है	२५४
११	बुद्धिगत बोद्धृता और अहन्ता के द्वारा आत्मा लक्षित होता है	२५५
१२-१३	बोद्धृता और प्रत्यक्ता का निरूपण तथा आत्मा में विद्यमान बोद्धृत्व और कर्तृत्व में भेद नहीं है	२५७-२५८
१४	आत्मा की बोद्धृता और प्रत्यक्ता पृथक् नहीं है	२५९
१५	कूटस्थ बोध के प्रसाद से ही बुद्धि की बोद्धृता सिद्ध होती है, बुद्धि खुद अनित्य है	२६०
१६-१७	परिणामी तथा कूटस्थ का लक्षण	२६०-२६१
१८-१९	आत्मा और बुद्धि का तथा बोद्धृत्व और प्रत्यक्त्व का असाधारण लक्षण	२६१-२६२
२०-२१	कूटस्थ आत्मा और परिणामी बुद्धि का सम्बन्ध अज्ञान से होने के नाते बुद्धि का भावाभाव आत्मा में भ्रम से व्यवहृत होता है	२६३-२६४
२२	इस प्रकार अन्वयव्यतिरेकसहकृत वाक्य ही अज्ञान का निवर्त्तक है	२६४

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
२३-२४	'त्वं' पद और 'तत्' पद का वाच्यार्थ प्रतिपादनीय नहीं है	२६८
२५	उद्दिश्यमान और विधीयमान दोनों पदों के वाच्यार्थों का विरोध होने के कारण 'त्वं' पदार्थ का दुःखित्व एवं 'तत्' पदार्थ का परोक्षत्व अविवक्षित नहीं है	२६९
२६	'तत्' एवं 'त्वं' पदार्थों का विशेष्यविशेषणभाव एवं पूर्वोक्त विरोध के नाते दोनों पदार्थों से प्रत्यगात्मा लक्षित होता है	२७०
२७	सर्प के बाधित होने से रज्जुप्रतिपत्ति की तरह अहंकार से बाधित होकर वाक्यार्थ की प्रतीति होती है	२७१
२८	जैसे-जैसे विरोधी परिच्छेदाभिमान दूर होता है वैसे-वैसे 'तत्' पदार्थ 'त्वं' पदार्थ के निकटवर्त्ती होता है	२७२
२९-३१	देहादि व्यवधान से आत्मस्वरूप होने पर भी ब्रह्म परोक्षरूप से ही ज्ञात होता है, इस विषय में दृष्टान्त	२७५
३२	पद की वृत्ति सामान्य में होने पर भी श्रुति-लिङ्ग आदि के द्वारा प्रतिबद्ध होकर पद विशेषार्थ का व्यञ्जक होता है	२७६
३३-३४	अनुमान से बुद्ध्यादि का अनात्मत्व निश्चित होने पर भी अज्ञान की निवृत्ति न होने से वाक्य ही आश्रयणीय है	२७७-२७८
३५-३८	श्रुति का प्रमाण्य ही निःसन्दिग्ध है, क्योंकि श्रुति प्रमाणान्तर से अनधिगत वस्तु का प्रतिपादन करती है, कुछ भी विपरीत प्रतिपादन नहीं करती, संशयित या अप्रतिपादन भी नहीं करती	२७९-२८१

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
३९-४२	श्रुति द्वारा अनुगृहीत अन्वयव्यतिरेक न्याय का उदाहरण	२८१-२८४
४३	अपने स्वरूप के विलय से ही अहं-वृत्ति वाक्यार्थज्ञान का कारण होती है	२८४
४४-४६	'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों के साथ प्रत्यक्षादि का विरोध नहीं है	२८५-२८६
४७-५२	प्रमाणान्तर से निरपेक्ष न होने से 'तत्त्वमसि' आदि अभिधाश्रुति वाक्य आत्मवस्तु के प्रमाणन में असमर्थ है—इस आपत्ति के उत्तर में, आत्मा प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा अनधिगम्य होने के कारण कहे हुए विषय में अभिधाश्रुति के सामर्थ्य का वर्णन	२८८-२९०
५३	अत: कृत-अन्वयव्यतिरेक जिज्ञासु, वाक्य से ही तत्त्वज्ञानलाभ करता है	२९०
५४-५५	आत्मा और अनात्मा का विवेकप्रदर्शन	२९१-२९४
५६	देहेन्द्रियादि की तरह दृश्य होने के कारण अहंकार भी अनात्मा है	२९५
५७	अनुमान अस्तित्वमात्र-निष्ठ होने के नाते उससे आत्मा की साक्षात् प्रतीति नहीं होती	२९७
५८	अभिव्यञ्जक अन्त:करण के न रहने के कारण सुषुप्ति में अज्ञान का स्पष्ट अनुभव नहीं होता	३००
५९	दाह्य काष्ठ और दाहक अग्नि की तरह अहंकार और आत्मा का एकत्र ज्ञेयज्ञातृत्व होता है	३०२
६०-६२	ज्ञाता उपक्रियमाण या अपक्रियमाण होने पर ही विषय में ज्ञाता का मम-ज्ञान उत्पन्न होता है, नहीं तो इदं ज्ञान उत्पन्न होता है	३०४-३०६

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
६३-७०	अन्वयव्यतिरेकजात अनुभव आदि से आत्मा और अनात्मा का विवेक ज्ञात होता है, किन्तु अज्ञान की हानि वाक्य से ही होती है। इस विषय में 'दशम' वाक्य का दृष्टान्त	३०७-३१३
७१-७२	बुद्धि चिदाभास के द्वारा प्रदीप्त होकर प्रत्यगात्मा की तरह लक्षित होती है। यही बुद्धि में आत्मभ्रान्ति का कारण है	३१४
७३-७४	भ्रान्तिप्रसिद्ध वस्तुओं के अनुवाद से तत्त्वमसि आदि वाक्यों का उपदेश होता है	३१५-३१६
७५	तत् और त्वं पदों का वाच्यार्थ अविवक्षित है। विरोधी अंश के परित्यागपूर्वक उसका अविरुद्धांश ही व्यवस्थित है	३१७
७६	इस प्रकार लक्षणभूत तत् और त्वं पदों का पर्यवसान ही लक्ष्यभूत द्वित्व और पारोक्ष्यवर्जित अखण्डैकरस आत्मा है	३१९
७७	'त्वं' पदार्थ का अहंकारांश और 'तत्' पदार्थ की परोक्षता हेय है	३२१
७८	'तत्' और 'त्वं' पदार्थों के विरुद्धांश का परित्याग	३२२
७९	अद्वितीयत्व और प्रत्यक्त्व के साथ संसारिता और पारोक्ष्य का विरोध होने के नाते अन्तिम दोनों ही बाधित होते हैं	३२३
८०	'त्वं' और 'तत्' पदार्थों का ऐक्य ही पुरुषार्थ होने के नाते उनके विरोधी संसारिता और परोक्षता ही बाधित होते हैं	३२४
८१-१२६	**प्रसंख्यानवाद का निराकरण–**	**३२५-३६६**

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
८१-८२	वाक्य केवलमात्र वस्तुनिष्ठ है, अतएव वाक्य दृष्टिविधायक है यह कल्पित नहीं हो सकता	३२५-३२६
८३-८६	हर प्रमाण का अपने विषय में प्रामाण्य है। प्रमाण-समूह परस्पर विरुद्ध नहीं है	३२८-३३०
८७	सुखदुःखादि प्रत्यक्ष होने के नाते आत्मसमवेत नहीं है	३३१
८८	प्रामाणिक होने पर दुःख दूर होना असम्भव है	३३२
८९	सम्यक् अनुष्ठित प्रसंख्यान आत्मा का दुःखित्व निराकरण नहीं कर सकता, क्योंकि प्रत्यक्षादि के विरोध के कारण प्रमा का उत्पादन नहीं कर सकता	३३२
९०	अभ्यास से जो उत्पन्न होता है वह चित्त की एकाग्रता ही है, प्रमाण नहीं	३३३
९१	अभ्यास से दुःख की निवृत्ति एकान्तिक नहीं है	३३४
९२	अल्प अभ्यासजनित भावना कल्पकोटिस्थायी दुःख का ध्वंस कर नहीं सकती	३३४
९३	भावना का फल अनित्य है	३३५
९४	आगमवाक्य द्वारा आत्मा का निर्दुःखित्व प्रतीत होने के कारण प्रत्यक्षादि विश्वसनीय नहीं है	३३७
९५	श्रुति भी प्रत्यक्षादि की बहिर्मुखता कहती है	३३९
९६	'मैं दुःखी हूँ' इस प्रकार की प्रत्यक्षता आत्मा में गौण है	३४०
९७-१०४	**अहं वृत्ति के द्वारा आत्मा लक्षित होता है**	**३४२-३५०**
९७	इस विषय में दृष्टान्त—'अग्नि अध्ययन कर रहा है'	३४३

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
९८	'मैं', 'तुम' आदि शब्दों के बिना आत्मा के अवबोध का दूसरा उपाय नहीं है; ये आत्मा में गौणरूप से प्रयुक्त होते हैं, क्योंकि शब्द-प्रवृत्ति का हेतु जो षष्ठी, गुण, क्रिया, जाति और रूढि—ये आत्मा में नहीं हैं इसलिये आत्मा किसी भी शब्द का अभिधेय नहीं है	३४४
१०५-१०६	अपने नाम से आहूत व्यक्ति जिस प्रकार निद्रा से प्रबुद्ध होता है, उसी प्रकार तत्त्वमस्यादि वाक्य द्वारा अविद्या निद्रा से प्रबुद्ध होता है	३५०-३५१
१०७	ज्ञान और अज्ञान आत्मा को स्पर्श नहीं करता, किन्तु ज्ञान अज्ञान को ध्वंस करता है	३५३
१०८-१०९	मिथ्या उपाय के द्वारा भी सत्य का निर्णय हो सकता है	३५४
११०	आत्मा स्वप्रकाश होने के नाते अप्रबोधरूप हो नहीं सकता	३५६
१११	अविद्या की धृष्टता आश्चर्यकर है	३५७
११२	क्रियाकारकवर्जित आत्मा में अविद्या की सम्भावना नहीं है	३५८
११३	अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा आत्मा से अनात्मा पृथक् होने पर आत्मा में जो अभावरूपता की प्रतीति होती है, वह वाक्य द्वारा आत्मस्वरूप होने पर दूर हो जाती है	३५८
११४-११५	वह अभावरूपता की निवृत्ति अनुमान के द्वारा नहीं हो सकती, वाक्य से ही होती है	३५९
११६	विद्यालाभ के पूर्व या उसके बाद 'आत्मा में अविद्या की सम्भावना नहीं है' यह आपत्ति सम्भव नहीं है	३६०

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
११७	सुतरां तत्त्वमस्यादि वाक्य के अनादरपूर्वक प्रसंख्यान आदि का आश्रय करना उचित नहीं है।	३६१
११८	जो 'तत्त्वमसि' आदि वेदवाक्यों में विश्वास नहीं करते हैं, वे अन्य प्रमाण पर कैसे विश्वास करेंगे?	३६१
११९	'तत्त्वमसि' आदि वाक्य से प्रमिति की उत्पत्ति होती है; इसलिये यहाँ विधिपरत्व नहीं हो सकता	३६२
१२०-१२१	अनात्मा को आत्मा से पृथक् करके जिसने 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार वाक्यार्थ का बोध किया हो, उसे उपासना की क्या आवश्यकता है?	३६३
१२२	श्रुत वाक्यों से प्रमा की उत्पत्ति न होने पर वाक्य का प्रामाण्य भंग हो जाता है	३६४
१२३	प्रसंख्यान के द्वारा वाक्यार्थ की अवगति होने पर श्रुति पीडित होती है	३६४
१२४	प्रसंख्यान के अनुष्ठान से पूर्व युक्ति और शब्द से प्रमा उत्पन्न न होने पर बाद में कैसे होगी?	३६५
१२५	श्रुत प्रसंख्यान श्रवणादि के समय प्रयोक्तव्य है, किन्तु तत्साध्य ज्ञान में नहीं	३६५
१२६	प्रसंख्यान-विधि स्वीकृत न होने पर भी परमहंसीय आचरण शास्त्रीय है	३६७

चतुर्थ अध्याय

१	उत्तर ग्रन्थ का सम्बन्ध	३६८
२	विस्तारितरूप से कथित विषयों के संक्षेप के लिये यह अध्याय है	३६८
३	प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आत्मा और अनात्मा प्रमाणित होने पर भी अनात्मा की सिद्धि आत्मपूर्वक है	३६९

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
४	घटादि वस्तुओं का अनात्मत्व प्रसिद्ध है। आत्मा ज्ञाता के रूप से प्रसिद्ध है, पर शरीरेन्द्रियादि के विषय में संशय है	३६९
५	देह से बुद्धि तक सबके सब अनात्मा हैं	३७०
६	अहं-बुद्धि और इदं-बुद्धि दोनों ही देह के बारे में प्रतीत होने के नाते मोह होता है	३७०
७-८	अहंकार का इदमंश परित्यक्त होने पर शेष अंश तत्त्वमसि वाक्य से प्रत्यक् रूप से ज्ञात होता है	३७१
९-१३	केवल आत्मा और अनात्मा के विवेक से ही आत्मस्वरूप ज्ञात नहीं किया जा सकता। वाक्य के बिना आत्मस्वरूप का अवबोध नहीं हो सकता	३७२-३७५
१४	कहा हुआ विवेक बुद्धि में ही रहता है, बुद्धि ही इसको नष्ट करती है	३७६
१५-१७	इस भेदावलम्बी विवेक से आत्मसाक्षात्कार असम्भव है। वाक्य से ही आत्मसाक्षात्कार होता है। इस विषय में श्रुति का उदाहरण	३७८
१८	आत्मा और अनात्मा के विवेकज्ञ व्यक्ति को ही श्रुति 'तुम ब्रह्म हो' इस प्रकार उपदेश प्रदान करती है	३७९
१९-३५	श्रीमच्छङ्कराचार्यकृत उपदेशसाहस्री के उदाहरण से वर्तमान ग्रन्थ के गुरुसम्प्रदायपूर्वकत्व का वर्णन है	३८०-३९०
३६-३७	स्वाप्निक निमित्त से स्वप्नद्रष्टा जगने के बाद जिस प्रकार स्वप्न के करण, कर्म तथा कर्त्ता, कुछ भी देख नहीं पाता, उसी प्रकार अज्ञान निद्रा से श्रुति द्वारा प्रबुद्ध व्यक्ति प्रत्यगात्मा से अतिरिक्त गुरु-शास्त्र-शिष्य आदि कुछ भी देख नहीं पाता	३९०-३९१

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
३८-४४	दण्ड का ज्ञान होने पर दण्डसर्प जैसे दण्डावसान निष्ठ हो जाता है, वाक्य से प्रत्यगात्मज्ञान होने पर जगत् उसी प्रकार प्रत्यगात्मनिष्ठ हो जाता है। नींद में केवल मात्र द्वैतग्रहण का अभाव होने के कारण श्रुति द्वैत का अभाव बताती है, किन्तु उसी समय अज्ञान के अभाव से द्वैत ग्रहण का अभाव नहीं कहती। अत: सुषुप्ति अज्ञान का अभाव नहीं है। इस विषय में गौडपादीय तथा भाष्यकारजी के उदाहरण	३९१-३९५
४५	वह अज्ञान भी आत्मसम्बन्धित नहीं है	३९६
४६	यह बीजरूपी अज्ञान का ही द्वैतसम्बन्ध है, अविकारी आत्मा का नहीं	३९७
४७	कहे हुए विषय ही अन्वय-व्यतिरेक द्वारा प्रदर्शित हैं	३९८
४८-५०	ज्ञानमूर्त्ति आत्मा तीनों अवस्थाओं में ही अविकारी है, इस विषय में दृष्टान्त	३९९
५१	विद्वान् हर विषय में अनुमोदन तथा निषेध करते हैं	४००
५२	ग्रन्थ का उपसंहार	४००
५३	'मेरे से अतिरिक्त ज्ञान और अज्ञान का आश्रय कोई नहीं है', इस प्रकार ज्ञानी ही श्रेष्ठ ब्रह्मवित् है	४०१
५४-५९	ज्ञानी व्यक्ति प्रवृत्ति-निवृत्ति से शून्य होते हैं, उनका कोई कार्य शेष नहीं रह जाता, यही सद्योमुक्ति का पक्ष है	४०४
६०-६१	फलोपभोग से ही प्रारब्ध कर्म का क्षय होकर विद्वान् देहत्याग करते हैं। यह जीवन्मुक्ति पक्ष है। इस पक्ष में भी वे प्रवृत्ति-निवृत्तिशून्य होते हैं। उनकी प्रवृत्ति विधिजन्य नहीं है	४०५

श्लोकाङ्क		पृष्ठाङ्क
६२-६७	'अलेपक' पक्ष में विद्वान् का स्वैराचरण सम्भव है। अलेपक पक्ष का सम्पूर्ण रूप से खण्डन तथा इसमें भाष्यकारजी की सम्मति	४०६-४१०
६८	अमानित्वादि तथा द्वेषशून्यतादि विद्या का साधन है, परन्तु बहिर्मुखी व्यक्ति को ज्ञान नहीं हो सकता	४११
६९	विद्वान् के लिए ये गुण स्वभाव से सिद्ध हैं, प्रयत्नाधीन नहीं	४१४
७०	इस ग्रन्थ को ग्रहण करने के लिए अमानित्वादि का अनुष्ठान और दुर्वृत्तादि का परित्याग करना चाहिये	४१४
७१-७३	संसार से विरक्त, संयमी, सर्वकर्मपरित्यागी, प्रत्यक्प्रवणबुद्धि निष्काम और शान्त यतिगण इस ग्रन्थ के अधिकारी हैं	४१५-१६
७४	श्रीमच्छङ्करभगवत्पाद के अनुग्रह से प्राप्त ज्ञान यहाँ प्रकरण के रूप में निबद्ध किया गया है। साधुओं के द्वारा यह परीक्षणीय	४१७
७५	विशुद्धचित्त व्यक्ति के निकट चारु और सुभाषित प्रतिभात होता है	४१७
७६	सर्वदा ब्रह्मसंस्थ आचार्य की सेवा से सम्यक् ज्ञान लाभ करके दुःखियों के जन्ममृत्यु-निवारण के लिए ग्रन्थ में बताया गया है	४१८
७७	ज्ञानदाता श्रीगुरु को नमस्कार	४१९
७८	सम्बन्धोक्ति का उपसंहार	४१९
	श्लोकानुक्रमणिका	४२१
	उद्धरणसूची	४२९